P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-7* ISSUE-7* March- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

प्राणतत्त्व का दार्शनिक स्वरुप

बबीता शर्मा
असिस्टेन्ट प्रोफेसर,
दर्शन विभाग,
कन्या गुरुकुल परिसर,
गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय
हरिद्वार, उत्तराखण्ड, भारत

सारांश

इस लेख में सर्वप्रथम प्राण के प्रकारों का विवेचन किया गया है प्राण के नाम शास्त्रीय हैं, जिनका लौकिक अर्थो से कोई समबन्ध नहीं है जैसे– नाग, कूर्म, कृकल आदि शब्द बाह्य सर्प आदि अर्थो में प्रयुक्त किये जाते है किन्तु दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में उनका अर्थ बदल जाता है। इसके पश्चात् प्राण ब्रह्म के वाचक के रूप में प्रयुक्त किया गया है जैसे ब्रह्म एक चराचर व्यापी चैतन्य तत्व उपनिषदों में वर्णित है वैसे ही प्राणियों के देह में प्राणतत्व नासिक्य प्राण के रूप में अवस्थित है। जैसे ब्रह्म सकल जगत् का आधार है वैसे ही देह में प्राण जीवनाधार के रूप में स्थित है यही इस लेख में प्रतिष्ठापित किया गया है।

मुख्य शब्द : नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धन्नजय, अनीश्वर, उध्वेग, व्यूह, उज्जीवक।

प्रस्तावना

सकल चराचर जगत् में प्राण ही वह विश्वव्यापी विराट् तत्त्व है जिससे समस्त प्राणियों में चेतना की ऊर्जा का संचार होता है और श्वास प्रश्वासादि क्रियाएँ अनवरत उत्पन्न होती हैं। इसीलिए परमात्मा की इस सृष्टि में जो क्रियात्मक शक्ति है उसी को प्राणतत्त्व या प्राणशक्ति कहा जाता है। पातंजलि योग सूत्र[1] में कहा गया है कि–"समान जयात् प्रज्वलम्"..... प्राणतत्व को ही एक चेतन उर्जा कहा गया है। प्राणशक्ति के कारण ही मनुष्य, पशु पक्षी, कीट आदि प्राणी लता गुल्म वृक्ष पाषाण आदि में उपचय और अपचय होते हैं। जब इनमें प्राणशक्ति का अभाव हो जाता है तो सभी पदार्थ सूखने लगते हैं। मनुष्य आदि प्राणियों में तो प्राणशक्ति के अभाव के लक्षण जल्दी प्रतीत होने लगते हैं किन्तु वृक्ष आदि में इनके लक्षण विलम्ब से दिखाई देते हैं। पत्थर, मृत्तिका, रत्नादि में तो प्राणाभाव का पता अत्यन्त विलम्ब से चलता है। जीवित शरीर में रक्त का संचार और वृक्षादि में रस का संचार प्राणशक्ति से ही होता है। प्राण के संयोग और वियोग से ही शरीर में जीव के होने और न होने का अनुमान लगाया जाता है।

यद्यपि यह प्राणतत्त्व एक ही हैं किन्तु वृत्ति के कार्यभेद से दस नामों से जाना जाता है। गोरक्ष संहिता[2] में प्राणवायु को पृथक्–पृथक् दस रूपों मे विभक्त किया गया है।

प्राणोऽपानः समानष्चोदानव्यानौ च वायवः।
नागः कूर्मोऽथ कृकलो देवदत्तो धनंजयः।।

अर्थात् प्राण अपान, समान, उदान, व्यान नाग कूर्म कृकल, देवदत्त और धनंजय ये प्राणवायु के दस प्रकार हैं। प्राण तो एक ही है किन्तु स्थान और कार्य के भेद से दस हो जाते हैं।

श्वास को अन्दर खींचना और अन्तर्वायु को बाहर निकालना, मुख और नासिका द्वारा उस वायु को गतिशील बनाना, खाये हुए अन्न और पिये हुए जल को पृथक्पृथक् करके अन्न को मल रूप में और जल को मूत्र तथा स्वेद के रूप में बनाना तथा रस, रक्त आदि अष्ट धातुओं का निर्माण करना प्राणवायु का कार्य है। हृदय से लेकर नासिकापर्यन्त इसका मुख्य स्थान है। चक्षुरादि इन्द्रियों का संचालन इसी पर आश्रित है।

प्राण के द्वितीय प्रकार अपानवायु का कार्य है मल को गुदा के द्वार से, मूत्र को शिश्न के द्वार से तथा अण्डकोष के मार्ग से वीर्य को बाहर निकालना। गर्भ को नीचे ले जाना तथा कमर, घुटने तथा जंघाओं को क्रियाशील रखना भी इसी का कार्य है।

प्राण का तीसरा प्रकार है समानवायु।यह हृदय से लेकर शरीर के मध्यभाग नाभिपर्यन्त स्थित है। पक्व रस को समस्त अंगों और नाड़ियों में बराबर–बराबर विभाजित करना समान का कार्य है। यदि समान वायु कार्य करना

बन्द कर दे तो भुक्त रस एक ही स्थान पर पड़ा रहेगा और शरीर में सब अंगों की वृद्धि नहीं हो सकेगी।

उदानवायु कंठ से लेकर सिर तक कार्य करता है। यह शरीर को स्फूर्त बनाये रखता है। व्यष्टि प्राण और समष्टि प्राण में सम्बन्ध बनाये रखना उदान का ही कार्य है। मृत्युकाल में सूक्ष्म शरीर को स्थूल शरीर से बाहर निकालना तथा सूक्ष्म देह के गुण कर्म वासना और संस्कारों के अनुरूप गर्भ में प्रवेश करना, उदान द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। योगियों का परकाय प्रदेश इसी के द्वारा होता है। व्यानवायु समस्त शरीर में प्रतिक्षण गतिशील रहता है। शरीर के सभी अंगों में और नाड़ियों में रक्त का संचार व्यान के द्वारा किया जाता है।

षष्ठ प्राण का नाम नागवायु है। छींकना, हिचकी लेना, डकार लेना जिसके कारण होताहै वह नागवायु है। नाग सर्प को कहते हैं। जिस प्रकार सर्प फुंकार के द्वारा अन्दर की वायु को बाहर फैंकता है, उसी प्रकार जब प्राणवायु अन्दर के विकारों को एक झटके से छींक आदि के द्वारा बाहर निकालता है तब वह नागवायु कहलाता है। कूर्म वायु संकोचन का कार्य करती है। कूर्म का अर्थ है कछुवा। जिस प्रकार कछुवा सुरक्षा के लिए अपने अंगों को अन्दर खींच लेता है, उसी प्रकार जब मनुष्य अपने श्वास को अन्दर ही रोककर समस्त अंगों को समेटकर निश्चल होकर बैठना चाहता है तब कूर्म वायु कार्य करती है।

आठवीं प्राणवायु है कृकर या कृकल, यह वायु भूख, प्यास, जम्भाई, छींक आदि कार्य करती है। कृकर या कृकल का शाब्दिक अर्थ है गिरगिट या छिपकली। ''कृकं लाति इति कृकलः।'' इसे कृकलास भी कहते हैं।कृक का अर्थ है गला। कृकल अर्थात् गिरगिट या छिपकली भूख प्यास आदि लगने पर अपने गले को वायु से भर लेते हैं। उसी के स्वभाव के आधार पर इस वायु को कृकल कहा जाता है।

नवम वायु देवदत्त कहलाता है। निद्रा तन्द्रा सुषुप्ति तथा मूर्च्छा आदि में देवदत्त प्राण करता है। जैसा कि इसका नाम है। यह दैविक वरदान है जो मनुष्य को नई ऊर्जा प्रदान करता है। इसी प्रकार धनंजय वायु जीवनदायिनी ऊर्जा और पोषण प्रदान करता है। धन का अर्थ जीवन है। प्राण जीवनाधार तत्त्व है। इसीलिए इन्द्रियों को प्राणमय कोष कहा जाता है। जो मनुष्य अभ्यास द्वारा प्राण पर अधिकार कर लेता है वह मन इन्द्रिय और शरीर का अधिपति हो जाता है। उसी को गीता में हृषीकेश और गुडाकेश आदि शब्दों से कहा गया है। प्राण निग्रह को प्राणायाम कहते है। प्राणायाम से शरीर तो निरोग रहता ही है वह जितेन्द्रिय, वशी और शिवरूप भी हो जाता है। इसीलिए हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है– चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत् । अर्थात् प्राण के चंचल होने पर चित्त चंचल होता है और उसके निश्चल रहने पर चित्त भी स्थिर रहता है। मन का निग्रह अत्यन्त कठिन है किन्तु प्राणायाम के सिद्ध होने पर मन भी निगृहीत हो जाता है। इसीलिए कहा गया है –

प्राणायामैर्दहेद् दोषान् धारणाभिष्च किल्विषम्।
प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीष्वरान् गुणान्।।
योगचूड़ामणि[3]

अर्थात् एक साधक प्राणायामों के द्वारा शारीरिक दोषों को जलाकर भस्म करता है, धारणाओं से मानसिक पापों को नष्ट कर सकता है। प्रत्याहार के द्वारा विषयसंसर्ग से उत्पन्न दोषों का शमन करता है तथा ध्यान के द्वारा अनीश्वर अर्थात् ईश्वर से ऊपर गुणों को अर्थात् तत्त्वज्ञान को प्राप्त करता हैं ।

इस नश्वर देह में प्राण वह दिव्य तत्त्व है जिसके द्वारा केवल शरीर ही नहीं अपितु क्रोध, उद्वेग, निराशा, भय और कामविकारों का भी नाश एक योगी कर सकता है। इतना ही नहीं अपितु वह स्मरणशक्ति, दूरदर्शिता, कुशाग्रता, मेधा प्रज्ञा आदि मानसिक शक्तियों का विकास करके प्राणायाम से दीर्घजीवन और परमानन्द की प्राप्ति कर सकता है।

शरीर की दो शक्तियां हैं क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति। क्रियाशक्ति को प्राण कहते हैं। ज्ञानशक्ति का नाम बुद्धि है। उपनिषदों में इस तथ्य को अनेक स्थलों पर उद्घाटित किया गया है। छान्दोग्य[4] में कहा गया है कि–

सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि।
प्राणमेवाभिसंविषन्ति प्राणमभ्युज्जिहते।।
1/11/5

अर्थात् समस्त चराचर भूत भौतिक जगत् प्राण में ही लीन होते हैं और पुनः प्राण से ही प्रकट होते हैं। प्राण के इस सर्वस्थितिकारक रूप को देखकर आचार्य शंकर ने तो इसे ब्रह्मरूप ही कह दिया। ब्रह्मसूत्र[5] के '' अत एव प्राणः इस सूत्र के भाष्य में आचार्य कहते हैं –

तस्मात् सिद्धं प्रस्तावदेवतायाः प्राणस्य ब्रह्मत्वम्।

अर्थात् प्राण का ब्रह्मत्व उसकी शक्तियों के आधार पर ही उत्पन्न होता है। चूंकि प्राण ब्रह्म से उत्पन्न होता है इसलिए उपचार से प्राण को भी ब्रह्मरूप ही कह दिया गया है। बृहदारण्यक[6] में कहा गया है –

अस्मादात्मनः सर्वे प्राणाः
सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति। 2/1/20

अर्थात् समस्त प्राण साक्षात् परमात्मा से ही निकलते हैं। समस्त प्राणी भी उसी से व्युच्चरित होकर उसी में लय को प्राप्त करते हैं। 'अत एव प्राणः' इस सूत्र के भाष्य में आचार्य इसी बात को सिद्ध कर रहे हैं कि '' तस्मात् सिद्धं प्रस्ताव देवतायाः प्राणस्य ब्रह्मत्वम् ''। मुण्डक[7] में भी समस्त जगत् की उत्पत्ति सीधे ब्रह्म से बतायी गयी है –

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विष्वस्य धारिणी।।
मुण्डक 2/1/3

सांख्याचार्यों ने स्पर्श तन्मात्र से वायु की उत्पत्ति स्वीकार की है। चूँकि वायु और प्राण दोनों में गति है इसलिए वायु के साथ प्राणशब्द का व्यवहार किया गया है। (सामान्य करण वृत्तिः प्राणाद्याः वायवः पन्च–सांख्यकारिका । 29) नैयायिकों ने भी नवद्रव्यों के अन्तर्गत प्राण का अन्तर्भाव किया है। उनके अनुसार एक ही वायु स्थानभेद से प्राण, अपान समान, उदान और व्यान इन पॉच नामों से कहा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त आचार्यों ने इस बाह्यवायु को प्राण कहा है किन्तु इसका अभिप्राय वायु को प्राण कहने में नही है। वास्तव में गत्यात्मक होने के कारण वायु को

उपचार से प्राण कह दिया गया है। चूँकि प्राण की गत्यात्मकता प्रकट में सर्वाधिक वायु में दिखाई देती है। इसलिए गौण रूप से इस बाह्य वायु को प्राण कह दिया जाता है। इसमें भी नासिका और हृदय देश में विद्यमान वायु को विशेष रुप से वायु कह दिया जाता है।

प्राणशक्ति के बिना अन्य समस्त इन्द्रियां और स्थूल शरीर गतिशून्य हो जाता है। वह मृत कहलाता है। शरीर और इन्द्रियों में कार्य करने की क्षमता प्राण से ही आती है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए छान्दोग्य उपनिषद् में एकरूपक की कल्पना की गई है। एक बार प्राण और चक्षुरादि इन्द्रियों में श्रेष्ठता की स्पर्धा हुई। हम लोगों में कौन श्रेष्ठ और ज्येष्ठ है। यह जानने के लिए सबसे पहले चक्षु शरीर से निकलकर बाहर चली गई। चक्षु के चले जाने पर शरीर जीवित रहा हैउस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। एक वर्ष के पश्चात् जब चक्षु लौटकर आयी तो उसे जीवित देखकर चक्षु को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उस प्राणी से पूछा कि तुम मेरे बिना इतने दिनों तक कैसे जीवित रहे। प्राणी ने उत्तर दिया कि जैसे अन्धे लोग जीवित रहते हैं वैसे ही जीवित रहा। यह सुनकर चक्षुरिन्द्रिय बहुत लज्जित हुई। इसी प्रकार श्रोत्र ने बाहर निकल कर देखा और पूछा कि तुम मेरे बिना कैसे जीवित रहे ? प्राणी ने कहा जैसे बधिर लोग जीवित रहते हैं। इसी प्रकार घ्राण रसना तथा त्वक्आदि इन्द्रियाँ भी उस प्राणी को छोड़कर जाने पर वह व्यक्ति फिर भी जीवित रहा जैसे गूंगे लंगड़े आदि जीवित रहते हैं।अन्त में प्राण की बारी आई। प्राण जाने लगा तो सब इन्द्रियां तड़पने लगीं छटपटाने लगीं। निष्क्रिय और निस्तेज होकर मरने लगीं तो सभी इन्द्रियों ने प्राण को रोका और उसे शरीर में रहने के लिये प्रार्थना करने लगीं। इन्द्रियों ने कहा कि तुम ही हम सबमें श्रेष्ठ हो –

अभिसमेत्योचु र्भगवन्नेधि त्वं न श्रेष्ठोऽसि,
मोत्क्रमीरिति। छान्दोग्य[8] 5/1/12।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि समस्त इन्द्रियों में प्राण ही श्रेष्ठ है और वही ज्येष्ठ भी है।

न वै वाचो न चंक्षूषि न श्रोत्राणि न मनांसि।
इत्याचक्षते प्राणा इत्येवाचक्षते प्राणो ह्येवैतानि सर्वाणि भवति।।

छान्दोग्य[9] 5/1/15

यहाँ शंका होती है कि यदि इन्द्रियों में प्राण श्रेष्ठ है तो क्या प्राण भी इन्द्रिय ही हैं? नहीं ऐसी बात नहीं है। प्राण इन्द्रिय नहीं है अपितु इन्द्रियों की शक्ति उनका प्रेरक तथा उज्जीवक है। सदैव इन्द्रियों के साथ रहता है अतः गौण रूप से प्राण को इन्द्रिय कह दिया गया है।

प्राण वायु देवता का अध्यात्मरूप है। वह एक ही है किन्तु पंचव्यूहात्मक बनकर पॉच उपाधियों को धारण करता है। प्राण, अपान आदि के भेद से प्राण की पांच उपाधियां हैं। यह परा प्रकृति अर्थात् परमेश्वर की मायाशक्ति का ही रूप है। गतिशीलता अथवा गत्यात्मकता के कारण स्थूल वायु से तुलना करके प्राण को वायु कह दिया गया है। यह चराचर का जीवन है। सृष्टि में जो वृद्धि और ह्रास दिखाई दे रहा है ये सब उस प्राण की जीवन शक्ति का अनुमान कराते हैं। एक ही प्राण क्रियाभेद और स्थानभेद से कहीं पॉच कहीं सात, कहीं दस और कहीं ग्यारह तथा तेरह संख्या वाला माना गया है।

अध्ययन का उद्देश्य

शरीर में रहने वाले नासिक के प्राण का परब्रह्म के रूप में प्रतिपादित करना इस लेख का उद्देश्य है। विभिन्न दृष्टान्तों और उदाहरणों से तथा शास्त्रीय उदाहरणों से इस सिध्दान्त की पुष्टि की गई है।

निष्कर्ष

लेख का निष्कर्ष यह है कि प्राण शक्ति के बिना समस्त इन्द्रिया और शरीर गतिशून्य हो जाता है। यदि इन्द्रियों और स्थूल शरीर को बलवान और स्थिर बनाना है तो प्राण शक्ति को जागृत करके तेजस्वी बनाना पडेगा समस्त इन्द्रियों में प्राण ही श्रेष्ठ है और ज्येष्ठ है।

अंत टिप्पणी

1. *पातंजलि योगसूत्र, पाद 3 सूत्र 40*
2. *गोरक्ष संहिता*
3. *योगचूडामणि*
4. *छान्दोग्य उपनिषद्, 1/11/5*
5. *ब्रह्मसूत्र*
6. *बृहदारण्यकउपनिषद्, 2/1/20*
7. *मुण्डक उपनिषद्,2/1/3*
8. *छान्दोग्य उपनिषद्, 5/1/12*
9. *छान्दोग्य उपनिषद्, 5/1/15*